

*Date: 04-05-26*

Tackling takedowns

Online censorship is a threat to the fundamental right to free expression

Editorial

The Union government's enthusiastic misuse of its spurious powers to censor lawful speech online is an alarming and exponentially growing threat to India's democracy. With amendments to the IT Rules, 2021 — which are themselves on shaky constitutional ground — the government has successfully pressured Meta and X to take down content within three-hour timelines that leave little time to push back, lest they lose "safe harbour" protections and be dragged into court or, worse, have their employees face personal criminal liability. Under the cover of fighting AI-generated content, all speech is being subjected to a despotic regime where the state can silence speech at will, destroying the promise of the Internet, which has emerged as an important alternative voice to express everyday concerns. Visceral, hard-hitting expressions of independent voices are an integral part of a society led by free ideals and representative democracy. Weaponising Sections 69A and 79(3)(b) of the IT Act, 2000 to take down such content, and accounts wholesale, distorts the public conversation in a way that benefits the ruling party, with scant regard for the freedoms of audiences and the livelihoods of creators. Often, entire accounts of the Opposition are deleted. Since this infrastructure of censorship has been built brick by brick without any moral compunctions on the path down which they lead, takedowns of independent media outlets and critical commentators have grown. Some have been reversed, at the cost of revealing their identity. The government continues to enjoy these powers under a veil of secrecy, publishing no meaningful data on how its hold on online discourse has tightened.

By opening up the so-called Sahyog portal to police officials around the country, requests under Section 79(3)(b) have been supercharged as a censorial rubber stamp that the IT Act simply does not give them. The clear Supreme Court precedent outlining what "actual knowledge" of illegality online constitutes for takedown orders has been reduced to a mockery. The Karnataka High Court has even brushed aside binding Court precedent under Shreya Singhal vs Union of India, even as the government has not dared to formalise the powers that it is exercising by passing a law in Parliament. Social media platforms have failed miserably in acting as a check in this ongoing rampage for power over online speech and have instead chosen the peace of mind that comes with automatically processing takedown notices. X continues to resist the Sahyog portal, but faces pressure from proceedings in the Karnataka and Delhi High Courts. The political elite must ponder the consequences of its campaign against online speech. Opposition-ruled States have quickly leapt to leverage the Sahyog portal's powers. A future government run by today's Opposition will likely play by the same sordid rules.

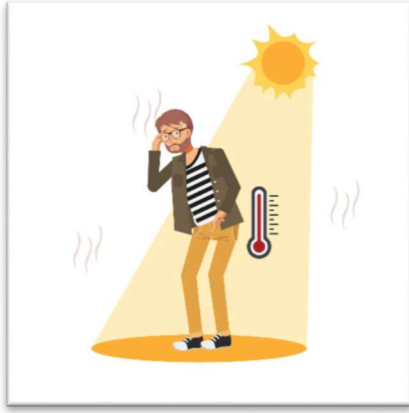


दैनिक जागरण

Date: 04-05-26

आग का सिलसिला

संपादकीय



गर्मियां बढ़ते ही घरों, कारखानों और अन्य स्थलों में आग लगने की घटनाओं का सिलसिला तेज होना इसलिए चिंताजनक है, क्योंकि अभी तो तापमान और ज्यादा बढ़ने के आसार हैं। इससे भी अधिक चिंता की बात यह है कि आग लगने की ज्यादातर घटनाएं एसी में ब्लास्ट अथवा शार्ट सर्किट होने की वजह से हो रही हैं। गत दिवस दिल्ली के विवेक विहार में एक चार मंजिला इमारत के फ्लैट में एसी में ब्लास्ट होने से इतनी भयंकर आग लगी कि अन्य फ्लैट भी उसकी चपेट में आ गए और नौ लोगों की जान चली गई। इसके एक दिन पूर्व दिल्ली के ही जौहरीपुर में एसी में ब्लास्ट होने से एक बच्चे की जान चली गई थी। इसके और पहले दिल्ली के ही निकट इंदिरापुरम में एक बहुमंजिला इमारत में शार्ट सर्किट से आग भड़की।

इस आग में लोगों की जान तो नहीं गई, लेकिन कई फ्लैट पूरी तरह से खाक हो गए। इस घटना में यह भी सामने आया कि गाजियाबाद का अग्निशमन विभाग ऐसे पर्याप्त उपकरणों से लैस नहीं था कि वह आग पर शीघ्र काबू पा पाता। ये घटनाएं तो केवल दिल्ली और उसके आसपास की हैं। ऐसी घटनाएं अन्य शहरों में भी सामने आ रही हैं और ज्यादातर के पीछे एसी अथवा किसी अन्य बिजली उपकरण में खामी-खराबी को रेखांकित किया जा रहा है। इसका मतलब है कि अपने यहां बिजली उपकरणों के निर्माण में गुणवत्ता संबंधी मानकों की अनदेखी हो रही है। ऐसा लगता है कि एसी के मामले में यह कुछ ज्यादा ही हो रहा है। जो भी हो, उन नियम-कानूनों को सही तरह से अमल में लाने की आवश्यकता है जो यह सुनिश्चित करते हैं कि बिजली उपकरणों का निर्माण निर्धारित गुणवत्ता के हिसाब से हो।

अपने देश में बिजली समेत हर तरह के उपकरणों की गुणवत्ता के मानक तो बने हुए हैं, लेकिन आम तौर पर यह देखने में आता है कि ऐसे उपकरणों का निर्माण करने वाली कंपनियां उनकी अनदेखी ही करती हैं। दोयम दर्जे के उत्पादों का निर्माण उपभोक्ताओं के साथ किया जाने वाला छल ही है। कई बार तो यह छल जानलेवा साबित होता है। गुणवत्ताहीन उत्पादों का निर्माण कोई नई समस्या नहीं है। चूंकि इस समस्या का समाधान नहीं किया जा पा रहा है, इसलिए दोयम दर्जे के उत्पादों का बनना और बिकना जारी है। हालांकि प्रधानमंत्री कई बार कह चुके हैं कि उद्यमियों को अपने उत्पादों की गुणवत्ता से कोई समझौता नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे अंतरराष्ट्रीय बाजार में तभी छाप छोड़ सकते हैं, जब उनके उत्पाद विश्वस्तरीय होंगे, लेकिन ऐसा लगता है कि उनकी बातों का भी कोई असर नहीं पड़ रहा है। ऐसे में भारतीय मानक ब्यूरो को और अधिक सजगता एवं सक्रियता का परिचय देना होगा। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक लोगों को बिजली उपकरणों का उपयोग करने में अतिरिक्त सावधानी बरतनी होगी।

नागरिकों की समस्या बढ़ाते जटिल नियम

डॉ. ब्रजेश कुमार तिवारी, (लेखक जेएनयू के अटल स्कूल आफ मैनेजमेंट में प्रोफेसर हैं)

ओडिशा के क्यॉंझर जिले की घटना केवल एक विचलित कर देने वाली खबर नहीं, बल्कि यह भारतीय प्रशासनिक और बैंकिंग व्यवस्था का एक कुरूप चेहरा भी है। एक आदिवासी व्यक्ति अपनी मृत बहन के बैंक खाते से लगभग 19,300 रुपये निकालने के लिए इतना विवश हुआ कि वह उसका कंकाल लेकर बैंक पहुंच गया। बैंक की ओर से कहा गया कि मृत्यु प्रमाणपत्र और कानूनी उत्तराधिकारी से जुड़े दस्तावेज आवश्यक थे, जबकि परिजन का आरोप था कि उसे बार-बार लौटाया गया। हालांकि डिजिटल मीडिया पर आलोचना के बाद प्रशासन के हस्तक्षेप से उन्हें उनकी राशि दे दी गई, पर बात यहीं नहीं खत्म होती। यह घटना इसलिए अधिक पीड़ादायक है, क्योंकि भारत ने पिछले एक दशक में वित्तीय समावेशन की बड़ी उपलब्धियां हासिल की हैं। प्रधानमंत्री जन-धन योजना के तहत करोड़ों बैंक खाते खोले जा चुके हैं। इनमें बड़ी संख्या महिलाओं, ग्रामीण परिवारों और कमजोर वर्गों की है। इसका अर्थ है कि बैंकिंग अब केवल शहरों, वेतनभोगी वर्ग और शिक्षित लोगों की सुविधा नहीं रही, बल्कि गरीब, मजदूर, किसान, आदिवासी, महिला और असंगठित क्षेत्र के नागरिक के जीवन से सीधे जुड़ गई है, लेकिन यही उपलब्धि अब हमें एक नए प्रश्न के सामने खड़ा करती है कि खाता खोलना तो आसान हो गया, पर खाते का अधिकार पाना क्या सचमुच आसान हुआ?

ओडिशा की घटना बताती है कि वित्तीय समावेशन का अगला चरण केवल बैंक खाता नहीं, बल्कि बैंकिंग न्याय होना चाहिए। हालांकि बैंकिंग नियमों का अपना महत्व है। मृत जमाकर्ता के खाते से पैसा किसी भी व्यक्ति को नहीं दिया जा सकता। धोखाधड़ी रोकना, वास्तविक उत्तराधिकारी की पहचान बैंक को भविष्य के विवादों से बचाना आवश्यक है, लेकिन नियम का उद्देश्य न्याय होना चाहिए, नागरिक को अपमानित करना नहीं। नियम सुरक्षा दें, भय नहीं। प्रक्रिया मार्गदर्शन दे, भ्रम नहीं। आरबीआइ ने भी मृत जमाकर्ताओं के दावों के निपटान को सरल और समयबद्ध बनाने पर जोर दिया है, लेकिन समस्या यह है कि नियमों की संवेदनशील व्याख्या शाखा स्तर तक नहीं पहुंचती। शहरों में बैंक कर्मचारी ग्राहक को फार्म, ईमेल, हेल्पलाइन और कस्टमर केयर से जोड़ देते हैं, लेकिन ग्रामीण भारत में बैंक शाखा ही नागरिक के लिए पूरा सिस्टम है। वहां शाखा प्रबंधक, बैंक मित्र, पंचायत सचिव, पटवारी, तहसीलदार और पुलिस, सभी मिलकर नागरिक के लिए राज्य का चेहरा बन जाते हैं। यदि इस चेहरे पर संवेदना नहीं है, तो नागरिक के लिए लोकतंत्र कागजों का ढेर बन जाता है।

आज भारत डिजिटल भुगतान, यूपीआइ, आधार और जन-धन के माध्यम से वित्तीय समावेशन की दुनिया में उदाहरण बन चुका है, लेकिन सूचकांक और योजनाएं अपने-आप गरीब नागरिक की समस्या हल नहीं करतीं। असली परीक्षा तब होती है जब कोई अशिक्षित, आदिवासी, विधवा, बुजुर्ग या अकेला व्यक्ति बैंक के काउंटर पर खड़ा होता है और पूछता है कि अब मुझे क्या करना है? सिस्टम को बदलने की शुरुआत यहीं से होनी चाहिए। सबसे पहले, मृत खाताधारक के छोटे दावों के लिए एक सरल दावा प्रक्रिया बनाई जानी चाहिए। यदि खाते में राशि एक लाख रुपये से कम हो, तो ग्राम पंचायत, स्थानीय राजस्व अधिकारी, आधार आधारित पहचान, परिवार रजिस्टर, मृत्यु की स्थानीय पुष्टि और दो गवाहों के आधार पर प्राथमिक दावा स्वीकार किया जाना चाहिए। बड़ी राशि के मामलों में ही विस्तृत जांच आवश्यक होनी चाहिए। हर बैंक शाखा में मृत दावा सहायता डेस्क या कम-से-कम एक प्रशिक्षित अधिकारी हो, जो परिजन को चरणबद्ध तरीके से बताए कि कौन-सा

फार्म भरना है, मृत्यु प्रमाणपत्र कहां से बनेगा, कानूनी उत्तराधिकारी प्रमाणपत्र की जरूरत कब है, नामिनी न होने की स्थिति में क्या करना है और दावा कितने दिन में निपटेगा? बैंक और स्थानीय प्रशासन के बीच एक फील्ड वेरिफिकेशन प्रोटोकाल भी होना चाहिए। यदि कोई गरीब, अशिक्षित या दूरस्थ क्षेत्र का नागरिक मृत खाताधारक का दावा लेकर आता है और दस्तावेज अधूरे हैं, तो बैंक उसे वापस न भेजे, बल्कि उसकी समस्या का समाधान करे। ग्रामीण भारत में सत्यापन केवल कागज से नहीं, समुदाय से भी होता है। सरपंच, वार्ड सदस्य, आशा कार्यकर्ता, आंगनबाड़ी सेविका, ग्राम रोजगार सेवक ये सभी स्थानीय वास्तविकता से परिचित होते हैं। सिस्टम यदि इन्हें जिम्मेदारी और जवाबदेही के साथ जोड़े, तो गरीबों को दफ्तर-दफ्तर नहीं भटकना पड़ेगा।

इसके अलावा मृत्यु प्रमाणपत्र की प्रक्रिया को आसान और समयबद्ध बनाया जाना चाहिए। नामिनी को राष्ट्रीय वित्तीय साक्षरता अभियान का हिस्सा भी बनाया जाना चाहिए। आज करोड़ों बैंक खाते खुले हैं, लेकिन कितने खातों में नामिनी सही ढंग से दर्ज हैं, यह बड़ा प्रश्न है। अनक्लेम्ड डिपॉजिट की समस्या को गंभीरता से लेना होगा। भारतीय बैंकों में हजारों करोड़ रुपये ऐसे खातों में पड़े हैं जिन पर किसी ने दावा नहीं किया है। लोगों का उत्तरदायित्व भी तय होना चाहिए। साथ ही सिंगल विंडो व्यवस्था भी होनी चाहिए, ताकि जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो, तो परिवार को बैंक, बीमा, पेंशन, राशन, आधार, भूमि रिकार्ड और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के लिए अलग-अलग दफ्तरों में न जाना पड़े।



Date: 04-05-26

राहत के बीच

संपादकीय

पश्चिम एशिया में संघर्ष से उपजे बहुस्तरीय वैश्विक संकट के बीच देश के वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) संग्रह में खासी बढ़ोतरी अर्थव्यवस्था की गति को बनाए रखने के लिए निश्चित रूप से संबल प्रदान करेगी। इससे सरकारी कोष को मजबूती मिलेगी और विकास से जुड़ी नीतियों के निर्माण में भी आसानी होगी। जब सरकार के पास पर्याप्त पूंजी का प्रावधान होता है, तो नागरिकों के लिए मूलभूत सुविधाओं के सृजन या विस्तार की योजनाओं को जमीन पर उतारने में आर्थिक बाधाएं खत्म हो जाती हैं। जीएसटी संग्रह में 8.7 फीसद की वृद्धि दर्शाती है कि उपभोक्ता बाजार में उत्साह बना हुआ है और लोग सामान एवं सेवाओं पर खर्च कर रहे हैं। सरकार के स्तर पर इस बढ़ोतरी को पिछले वर्ष लागू किए गए जीएसटी सुधारों से जोड़कर देखा जा रहा है। मगर इसका एक पहलू यह भी है कि इन सुधारों से व्यापारी वर्ग से लेकर आम आदमी को एक तरफ राहत जरूर मिली है, लेकिन दूसरी तरफ उनकी मुश्किलें बढ़ी हैं।

सरकार की ओर से शुक्रवार को जारी आंकड़ों के मुताबिक, बीते अप्रैल में देश का जीएसटी संग्रह बढ़कर 2.43 लाख करोड़ रुपये के रिकार्ड स्तर पर पहुंच गया है। इससे पहले जीएसटी का सर्वकालिक उच्च संग्रह अप्रैल, 2025 में 2.23 लाख करोड़ रुपये से अधिक रहा था। इस बार घरेलू लेन-देन से सकल राजस्व 4.3 फीसद बढ़कर 1.85 लाख करोड़ रुपये से अधिक रहा,

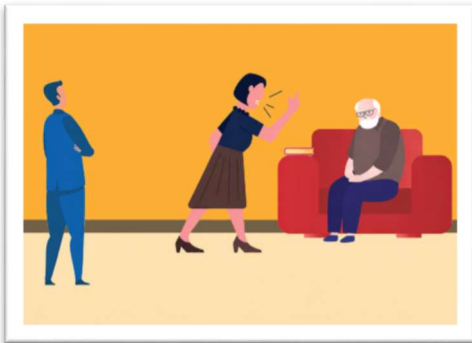
जबकि आयात से जीएसटी संग्रह 25.8 फीसद की वृद्धि के साथ 57,580 करोड़ रुपए पर पहुंच गया। इससे स्पष्ट है कि आयात से जुड़ी गतिविधियों में इजाफा हुआ है, जो वैश्विक अस्थिरता के बीच राजस्व प्राप्त करने के स्तर पर तो उत्साहजनक हो सकता है, लेकिन आत्मनिर्भरता के मोर्चे पर यह देश के कमजोर पक्ष को दर्शाता है। इसके साथ ही घरेलू लेन-देन और आयात आधारित राजस्व के बीच बढ़ा अंतर नीतिगत पुनर्मूल्यांकन की जरूरत की ओर इशारा करता है। ऐसे में जरूरी है कि 'मेक इन इंडिया' अभियान को वैश्विक आपूर्ति शृंखला में बदलावों के अनुरूप मजबूत करने के व्यापक स्तर पर प्रयास किए जाएं।

घरेलू लेन-देन के मोर्चे पर राजस्व संग्रह की बात की जाए, तो सितंबर 2025 से लागू हुए जीएसटी सुधारों के तहत करीब 375 वस्तुओं पर कर दरें कम की गई थीं और चार श्रेणियों को मिलाकर पांच एवं अठारह फीसद की दो श्रेणियां रखी गई थीं। सरकार का दावा है कि इन सुधारों का मकसद वस्तुओं की कीमतों में कमी लाना, खपत बढ़ाना और बाजार में मांग को विस्तार देना है। मगर सरकार के इस कदम से वस्तुओं की कीमतें कम होती नजर नहीं आ रही हैं और छोटे कारोबारी भी इसे राहत कम और परेशानी ज्यादा मान रहे हैं। इस परेशानी का मूल कारण कच्चे माल एवं सेवाओं तथा तैयार माल की कर दरों के बीच का भारी अंतर है। यानी कई तरह के कच्चे माल को जीएसटी की अठारह फीसद की श्रेणी में रखा गया है, जबकि उससे तैयार माल पर पांच फीसद कर निर्धारित है। हालांकि, अतिरिक्त कर को सरकार से वापस लेने का प्रावधान है, लेकिन जमीनी हकीकत यह है कि लंबी और जटिल कागजी कार्रवाई के कारण इसमें महीनों लग जाते हैं। इसका असर आम आदमी की जेब पर भी पड़ता है। यह सही है कि राजस्व अर्जित करने के स्रोत में कर प्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान है, लेकिन यह देखना भी सरकार का काम है कि समाज के निचले एवं मध्य वर्ग पर कर का अतिरिक्त बोझ न पड़े।

Date: 04-05-26

उपेक्षा का दंश झेलते बुजुर्ग

ज्योति सिडाना



पारंपरिक समाज में बुजुर्ग पीढ़ी को परिवार की नींव माना जाता रहा है। विशेष रूप से भारतीय समाज में तो यह धारण रही है कि जिस घर में बड़े-बुजुर्गों का आशीर्वाद होता है, वहां हमेशा समृद्धि और खुशहाली का वास होता है। मगर पिछले कुछ वर्षों से कई मामलों में बुजुर्गों को जिस तरह की स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, उसे देखकर तो ऐसा नहीं लगता कि आज भी लोग ऐसा सोचते या मानते हैं। बुजुर्ग माता-पिता को अकेला छोड़ देने या फिर उन्हें वृद्ध आश्रम में रहने के लिए मजबूर कर देने की खबरें अक्सर आती रहती हैं। ऐसे में सवाल है कि क्या आज के समय में माता-पिता केवल बच्चों का पालन-

पोषण और समाजीकरण करने तक ही सीमित रह गए हैं, क्योंकि जब वे वृद्ध हो जाते हैं तो बच्चे उन्हें बोझ समझ कर

उपेक्षित करने लगते हैं। ऐसा लगता है कि बच्चों को अपने अभिभावकों से केवल संपत्ति चाहिए होती है, उनका प्यार या आशीर्वाद नहीं। इस उम्र में वे उनके किसी काम नहीं आ सकते, इसलिए उन्हें हाशिये पर धकेल दिया जाता है।

बुजुगों के लिए काम करने वाली एक गैर-सरकारी संस्था की सर्वेक्षण रपट के अनुसार, देश में वृद्ध महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार के मामलों से जुड़ी 49 फीसद घटनाओं में उनके बेटे ही शामिल होते हैं। इसके बाद दुर्व्यवहार करने वालों में पति और बहुएं आती हैं। बुजुगों की स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं की अनदेखी और उन्हें समय पर एवं पोषक भोजन न देने समेत अन्य जरूरतों पर ध्यान न देना वास्तव में हमारे सामाजिक और मानवीय मूल्यों के गिरते स्तर को दर्शाता है। भारत में हर बीस में से एक बुजुर्ग को दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है। युवा पीढ़ी यह भूल जाती है कि वे भी बूढ़े होंगे और उनकी नई पीढ़ी भी उनके साथ इसी तरह का व्यवहार कर सकती है। इसलिए वरिष्ठ नागरिकों की सुरक्षा और उनकी उचित देखभाल की व्यवस्था करने की संस्कृति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

समाज में इस तरह की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए तेलंगाना सरकार ने हाल में बुजुर्ग माता-पिता की देखभाल सुनिश्चित करने के लिए एक सख्त कानून का प्रावधान किया है। इसके तहत अगर कोई सरकारी या निजी कर्मचारी अपने माता-पिता की अनदेखी करता है, तो उनके मासिक वेतन में 10-15 फीसद या दस हजार रुपए की कटौती कर सीधे माता-पिता के खाते में भेज दी जाएगी। इसे सरकार का एक सराहनीय कदम कहा जा सकता है, जिसका मुख्य उद्देश्य बुजुर्गों को वित्तीय सुरक्षा और सम्मानजनक जीवन देना है। यह नियम सरकारी और निजी कर्मचारियों तथा जनप्रतिनिधियों, सभी पर समान रूप से लागू होगा। अगर कोई कर्मी अपने बुजुर्ग माता-पिता को भोजन, दवा या उचित देखभाल प्रदान नहीं करता है, तो इसके लिए जिला कलेक्टर के पास शिकायत दर्ज करनी होगी, जिसके बाद जांच कर उनके वेतन से कटौती की जाएगी।

देश भर में किए गए एक सर्वेक्षण के मुताबिक, लगभग 51.67 फीसद बुजुर्गों को घर में और 38.33 फीसद को समाज में मौखिक रूप से दुर्व्यवहार झेलना पड़ता है। जबकि 40 फीसद बुजुर्ग खुद को आर्थिक रूप से सुरक्षित महसूस नहीं करते। इन सभी आंकड़ों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि इन घटनाओं के लिए बहुत हद तक परिवारों की संस्कृति जिम्मेदार है भारतीय समाज में माता-पिता अपनी सारी जमा पूंजी बच्चों के पालन-पोषण और उनका भविष्य संवारने में लगा देते हैं, इस उम्मीद के साथ कि बुढ़ापे में वे उनका सहारा बनेंगे। मगर कई मामलों में देखा जाता है कि जब बच्चे खुद कमाने लगते हैं, तो वे अपने माता-पिता को अकेला छोड़कर देश, राज्य या शहर से बाहर जाकर अपनी नई दुनिया बसा लेते हैं। ऐसा लगता है कि आज की पीढ़ी के लिए परिवार का मतलब पति पत्नी और उनके बच्चों तक सीमित हो गया है। उन्हें अपने माता-पिता या भाई-बहनों से शायद कोई सरोकार नहीं होता, या फिर वे मासिक खर्चा भेजकर अपने कर्तव्य को पूरा हुआ मान लेते हैं। आज के डिजिटल युग में भावनाओं का महत्व लगभग समाप्त हो चुका है।

बच्चों को अपने माता-पिता से केवल धन और संपत्ति चाहिए होती है, उनकी देखभाल की जिम्मेदारी को वे बोझ मानते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि माता-पिता ने उनके लिए जो भी किया है, वह उनका फर्ज था। मगर बच्चों को यह समझना होगा कि बुढ़ापे में माता-पिता का सम्मान और उनकी देखभाल जिम्मेदारी है, एहसान नहीं। उन्हें रिश्तों और व्यापार में अंतर करना आना चाहिए, रिश्ते प्यार और सम्मान पर टिके होते हैं और व्यापार लाभ पर आधारित होता है। जबसे मनुष्य ने रिश्तों को पैसों में तौलना शुरू कर दिया, तब से संबंधों की डोर कमजोर होती जा रही है। लोग एक-दूसरे से दूरी बनाने लगे हैं, केवल उन्हीं से संपर्क बनाए रखने की जरूरत महसूस की जाती है, जो आर्थिक रूप से संपन्न हों और जिनसे स्वार्थ सिद्ध होता हो। यह विचित्र विडंबना है कि आज के युवा सोशल मीडिया पर ऐसे-ऐसे संदेश और तस्वीरें साझा करते हैं,

जिन्हें देखकर ऐसा लगता है कि वे रिश्तों के महत्व को गहराई से समझते हैं, लेकिन वास्तव में उनके पास अपनी बुजुर्ग पीढ़ी के लिए समय ही नहीं होता और न ही वे उनकी देखभाल की चिंता करते हैं। यानी रिश्तों के प्रति सम्मान और भावनाएं अब सिर्फ डिजिटल दुनिया में दिखाने तक ही सीमित हैं उम्र के अंतिम पड़ाव में जब मनुष्य का मन और शरीर दोनों शिथिल होने लगते हैं, ऐसे में उन्हें अपने बच्चों के सहारे की सबसे ज्यादा आवश्यकता होती है, विशेष रूप से भावनात्मक सहारे की जरूरत होती है।

मगर आज के उपभोक्तावादी समाज में संबंध, भावनाएं, प्रतिबद्धता और त्याग जैसे भाव अब शायद अर्थहीन हो चुके हैं। इनके स्थान पर भौतिक वस्तुओं का दिखावा युवा पीढ़ी पर इतना हावी हो गया है कि परिवार के बुजुर्ग और उनकी समस्याओं की उन्हें कोई चिंता नहीं होती है। माता-पिता की संपत्ति तो सभी बच्चों को चाहिए, पर उन्हें अपने साथ रखने और उनकी जिम्मेदारी उठाने को वे अपनी आजादी में व्यवधान मानते हैं। ऐसे में यह सवाल महत्वपूर्ण है कि क्या परिवार और विवाह जैसी हमारी सामाजिक संस्थाएं आज इस स्थिति में पहुंच गई हैं कि उन्हें कानून के हस्तक्षेप के बिना संतुलित नहीं रखा जा सकता ? एक और पक्ष पर भी ध्यान केंद्रित किए जाने की जरूरत है। कि इस तरह के कानून से शायद बुजुर्गों को आर्थिक सुरक्षा तो प्रदान की जा सकती है, जिससे उनकी मूलभूत आवश्यकताओं जैसे भोजन, उपचार और रहने की उचित व्यवस्था तो सुनिश्चित हो जाएगी, मगर क्या उन्हें बच्चों से भावनात्मक संबल, प्यार और देखभाल की गारंटी भी मिलेगी ? जीवन जीने के लिए रोटी, कपड़ा और आवास के साथ- साथ आत्म-सम्मान तथा अपनापन भी उतना ही जरूरी होता है। यह एक ऐसा विषय है, जिस पर सरकार से लेकर समाज के हर वर्ग को मिलकर सोचने की जरूरत है।
